# मृत्तिका उत्कीर्णन अलंकरण

पूर्णिया, बिहार


ABSTRACT

मैं यहां बिहार के एक सीमावर्ती क्षेत्र पूर्णिया के गांवों की कुटीर सज्जा पर चर्चा करना चाहता हूं। यूं तो गांवों में घरों को सजाने के लिए विभिन्न तरह के माध्यमों का व्यवहार किया जाता है किन्तु मैंने जिस विषय का चयन किया है, वह है मिट्टी के घरों की सजावट के लिए बनायी गयीं मिट्टी की उत्कीर्ण कलाकृतियां, यानी मृत्तिका उत्कीर्णन। पूर्णिया के ग्रामीण क्षेत्रों में मृत्तिका उत्कीर्णन मुख्यतः महिलाओं के द्वारा ही किये जाते हैं जिन्हे स्थानीय लोग 'लिखनी-पढ़नी' या 'चेन्ह-चाक' कहते हैं। परम्परागत चमत्कृत मोटिव, जिनके कुछ महत्वपूर्ण सांकेतिक अर्थ भी होते हैं, उनकी दीवारों पर उकेरे जाते हैं। यह विरल प्रतिभा प्रायः सभी संप्रदाय के ग्रामीण शिल्पियों में जन्मजात रूप से है।



संजय सिंह, कलाकार एवं शोधार्थी

भारतीय किसान संस्कृति का एक अजीब एवं महत्वपूर्ण पक्ष है - भित्तिचित्र एवं मृत्तिका उत्कीर्णन कला, जो सदियों से गांवों के घरों की दीवारों पर बनते चले आ रहे हैं। यह बहुमूल्य परंपरा आज भी एक जीवंत कलाकृति के रूप में भारत के विभिन्न प्रांतों में हो रहा है। इसका एक प्रमुख क्षेत्र भारत का उत्तर पूर्वी प्रान्त बिहार भी है।

बिहार का नाम आते ही भारत की सभ्यता, संस्कृति, इतिहास और ज्ञान चिंतन सामने उपस्थित हो जाता है। ऐसा लगता है जैसे शौर्य, नीति, धर्म, कला, विवेक, मर्यादा, संस्कृति, स्थापत्य, आदि सबों का केंद्र यहीं था। भारत के इतिहास में बिहार का यथेष्ट गौरव है। क्या धार्मिक क्या आध्यात्मिक क्या राजनीतिक और क्या कला एवं संस्कृति सभी दृष्टि से यह काफी पहले से समुन्नत है। यह बिहार के ऐतिहासिक सांस्कृतिक वैभव और धरोहर की बातें हैं। इससे इतर बिहार की संस्कृति का एक और महत्वपूर्ण पक्ष है, जिसका भारत तो क्या, बिहार के इतिहास लेखन में भी समुचित रूप से उल्लेख नहीं है। हर तरह की संस्कृति, साहित्य, रीति-रिवाज़ तथा शास्त्रीय कलाओं का इतिहास लिखा जा चुका है और इससे सारा जग परिचित है, किन्तु अभिजात्यता तथा अपनी संस्कृति को भूल बाहरी संस्कृति के आकर्षण के कारण यहां की ग्रामीण संस्कृति का एक मूल्यवान अंश अछूता ही रह गया  है। यह बिहार की सभी महत्वपूर्ण कला एवं संस्कृति का उद्‌गम स्थल है। वह है यहां की 'कुटीर सज्जा'। ऐसी बात नहीं हैं कि इसका उल्लेख बिलकुल ही नहीं हुआ है। लेकिन, अभी तक वह उल्लेख उनके महत्वों तथा गुणों की तुलना में नगण्य ही कहा जा सकता है।

कृषि प्रधान राज्य होने के कारण बिहार में गांवों की संख्या ज्यादा है। हालांकि, यहां के गांव किसी और प्रांतों के गांवों से ज्यादा अलग तो नहीं हैं परन्तु कुछ हद तक भौगोलिक स्थिति, धार्मिक तथा सामाजिक संस्कार और आर्थिक तथा राजनीतिक कारणों से थोड़ा अलग तो हैं ही। हर एक गांव की सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था एक-दूसरे से भिन्न है जिसकी वजह है अलग-अलग जाति के लोगों का अलग-अलग क्षेत्र विशेष में वास करना। उनके खान-पान, रीति-रिवाज में भी अंतर है। इसी प्रकार उनके हस्तशिल्प एवं कलाकर्मों में भी विभिन्नता है।

बहरहाल, मैं यहां बिहार के एक सीमावर्ती क्षेत्र पूर्णिया के गांवों की कुटीर सज्जा पर चर्चा करना चाहूंगा। यूं तो गांवों में घरों को सजाने के लिए विभिन्न तरह के माध्यमों का व्यवहार किया जाता है किन्तु मैंने जिस विषय का चयन किया है, वह है मिट्‌टी के घरों की सजावट के लिए बनायी गयीं मिट्‌टी की उत्कीर्ण कलाकृतियां, यानी मृत्तिका उत्कीर्णन। पूर्णिया के ग्रामीण क्षेत्रों में मृत्तिका उत्कीर्णन मुख्यतः महिलाओं के द्‌वारा ही किये जाते हैं जिन्हे स्थानीय लोग 'लिखनी-पढ़नी' या 'चेन्ह-चाक' कहते हैं। परम्परागत चमत्कृत मोटिव, जिनके कुछ महत्त्वपूर्ण सांकेतिक अर्थ भी होते हैं, उनकी दीवारों पर उकेरे जाते हैं। यह विरल प्रतिभा प्रायः सभी संप्रदाय के ग्रामीण शिल्पियों में जन्मजात रूप से है। पूर्णिया नेपाल तथा बंगाल से सटा एक सीमावर्ती जिला है। यह इस जिले के पुराने नाम 'पुरैनिया' का अपभ्रंश रूप है। अब यदि हम इसके गांवों की तरफ नज़र डाले तो यहां के गांवों का ढांचा क्रमश: परिवर्तित होता रहा है। पहले अक्सर सभी जातियों के लोग एक साथ एक ही गांव में रहते थे। धीरे-धीरे जनसंख्या वृद्‌धि

तथा आर्थिक सम्पन्नता के साथ-साथ जाति के आधार पर गांव अलग होते गए। फलतः अब एक गांव में एक ही जाति के लोगों की संख्या ज्यादा होती है। अन्य जाति के लोग उनके अधीन आश्रय लेने या जीवन निर्वाह के लिए आस-पास बस जाते हैं या फिर अपनी सुविधा के लिए बसा लिए जाते हैं। इस तरह से एक मुख्य गांव के आस-पास कई छोटे-छोटे गांव बसे हुए हैं। इन गांवों का बुनियादी ढांचा आर्थिक तथा जाति के आधार पर टिका है न कि सांस्कृतिक आधार पर। ये गांव कई भागों में विभक्त रहते हैं। प्रत्येक भाग को स्थानीय बोली में 'टोला' कहते हैं। ये टोले विभिन्न दिशाओं या जाति के नाम पर होते हैं। अन्य जाति या निम्न जाति का टोला मुख्य गांव के आसपास फैले रहते हैं।

घरों की बनावट

पूर्णिया में गांव के घरों में कुछ एक जमींदार तरह के लोगों को छोड़ अधिकांश घर बांस, फूस तथा मिट्टी के बने होते हैं। अक्सर ये घर आयताकार होते हैं जिनके ऊपर बांस फूस से ही बने छप्पर होते हैं। बगल की दीवार के लिए भी बांस-फूस का ही ढांचा बना कर लगाते हैं। फिर इसे मिट्टी से लेपकर पूर्ण करते हैं। इन घरों में अक्सर दो कमरे तथा एक बरामदा होता है। घर के अंदरूनी तथा बरामदे वाली दीवार को मिट्टी से लेपा जाता हैं। बाहरी दीवार को मिट्टी से नहीं लेपते हैं क्योंकि इस क्षेत्र में बारिश बहुत होती है। अतः हर साल ये मिट्टी के लेप खराब हो जाते हैं। संथालों के घरों की दीवारें पूरी तरह से मिट्टी की और काफी काफी मोटी होती हैं।

साधारणतः इनके घरों में एक ही कमरा होता हैं तथा बरामदा भी होता हैं। ये अपने घरों की दीवारों को मिट्टी से ही इस तरह से चिकनाई करते हैं कि यह सीमेंट की दीवार-सी लगती हैं। आश्चर्यजनक बात यह है कि गांव के सम्पन्न व्यक्ति जो अक्सर ऊंची जाति के होते हैं, उनके घर अच्छे होते हैं, उनमें एकाध को छोड़कर किसी तरह का अलंकरण नहीं मिलता है। यूं तो शादी-ब्याह और तीज-त्यौहार के मौके पर घरों को आमतौर पर सजाया जाता है, परन्तु वह स्थायी नहीं होता है। जिन जातियों में घरों को स्थायी तौर पर अलंकृत करने का रिवाज है, वे मुख्यतः संथाल, कुर्मी, हरिजन तथा मुस्लिम हैं। इनके भित्ति कला के बारे में जानने के लिए इनके रहन-सहन और तौर-तरीके तथा चरित्रों को जानना भी आवश्यक है।

संथाल

संथाल जनजाति के लोगों में अपने घरों को अलंकृत करने का प्रचलन सबसे ज्यादा है। (Fig 1) इनका मुख्य क्षेत्र पहले का दक्षिण बिहार था जो वर्तमान झारखंड है। किन्तु, पूर्णिया में भी उनकी संख्या कम नहीं है। कहा जाता हैं कि अंग्रेजों ने उन्हें यहां नील की खेती के लिए लाया था। ये कम-से-कम सौ-डेढ़ सौ साल से पहले आये थे। अब ये पूरे पूर्णिया में फैले हुए हैं। विभिन्न जगह फैले रहने पर भी ये साधारणतः समूहों में रहते हैं और काफी संगठित हैं। ये संथाली भाषा बोलते हैं जो ऑस्ट्रो-एशियाटिक परिवार से आया है। इसके अलावा वे हिन्दी तथा स्थानीय भाषा भी अच्छी तरह से बोलते हैं। वे एक

संगठित जीवन जीते हैं और उनमें व्यक्तिगतता जैसी कोई बात नहीं है और यह उनके सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक संबंधों में झलकता है। बुनियादी तौर पर संथाल खेतिहर तथा चरवाहे हैं। अब वे विभिन्न तरह के नौकरी-पेशा में भी लगते जा रहे हैं।

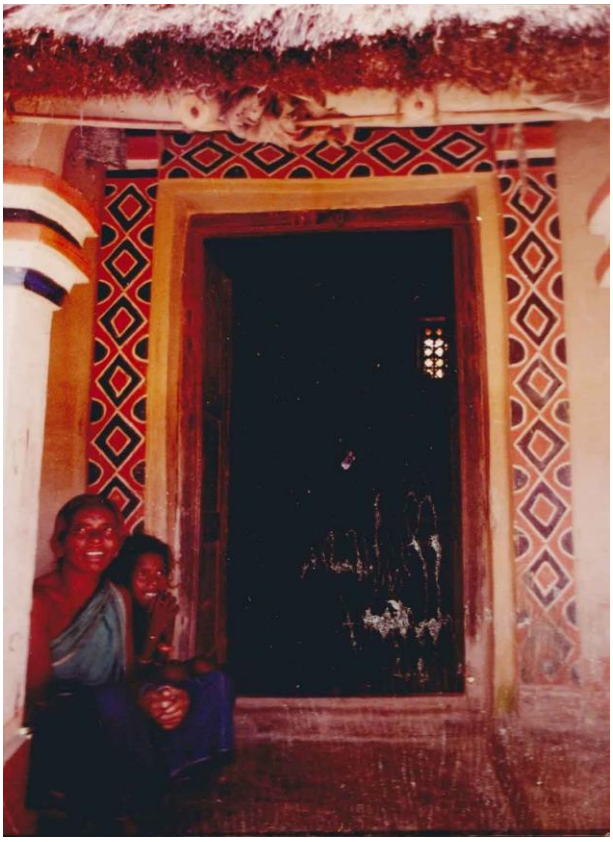

*Figure 1 A Traditional house of a tribal family. Photo courtesy: Sanjay Singh*

वे बहुत ही कर्मठ तथा परिश्रमी होते हैं, उनके अपने सामाजिक संगठन हैं जिसमें हर तरह के पद के लिए व्यक्ति का चुनाव किया जाता हैं तथा वे अवने कर्तव्यों का भली-भांति निर्वाह करते हैं। उनके वेश-भूषा, सांस्कृतिक क्रिया-कलाप काफी हद तक संथाल परगना तथा छोटानागपुर की तरह का रहते हुए भी थोड़ी बहुत स्थानीय गुण लिए हुए हैं।

मुसहर

मुसहर को हरिजनों की सूची में रखा गया हैं। वे काफी गरीब वर्ग के हैं और अपने शारीरिक परिश्रम के बल पर ही अपनी रोजी-रोटी चलाते हैं। माना जाता है कि वो बड़े ही आलसी होते हैं और गंदगी के साथ रहना पसंद करते हैं।

कुर्मी

यह एक परिश्रमी वर्ग है। इसका मुख्य पेशा खेती-बाड़ी तथा मजदूरी करना है। इनका रहन-सहन, वेश-भूषा तथा बोल-चाल सवर्णों की तरह ही है। ये मूलतः स्थानीय लोग हैं और काफी साफ-सुथरा रहते हैं।

मुस्लिम

मुस्लिम शेख का एक उप-समूह है - कुलैया जो स्थानीय हैं, किन्तु उनकी मौलिकता का कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता है। कहा जाता है कि यह पहले हिन्दू ही थे तथा यहीं के जलालगढ़ किले में अकबर के सैनिक की टुकड़ी में नियुक्त थे। वही दल धर्मांतरण कर मुस्लिम में परिवर्तित हो गया और जो अब कुलैया है। उनकी वेश-भूषा एवं कुछ रीत-रिवाज हिंदुओं की तरह ही हैं। ये सफाई पसंद हैं और अपने घरों को विभिन्न तरह से सजाकर रखते हैं। कुलैया के घरों में बने अलंकरण बेहद साफ सुधरे और दक्षतापूर्ण ढंग से बने होते हैं।

मृत्तिका उत्कीर्णन के रूप में ये अलंकरण बरामदे वाली दीवार तथा दोनों कमरों के दरवाजे के ऊपर से लेकर आस-पास तक फैले रहते हैं। कभी-कभी घर के भीतरी दीवार जो दरवाजे से सीधा दिखता है उस पर बने होते हैं। छोटे-मोटे सामान रखने के लिए मिट्टी जोड़-जोड़ कर जो खाने (shelf) बनाए जाते हैं, उन्हें भी अलंकृत किया जाता हैं। *(Fig 2)*

कभी-कभी बाहरी दीवारों पर भी अलंकरण किए जाते हैं लेकिन अधिकांश अलंकरण बरामदे पर ही होते हैं। इसकी वजह है। लोग अपना ज्यादातर समय बरामदे में ही बिताते हैं और रात में वहीं सोना भी होता है। आस-पड़ोस की महिलाएं भी खाली समय में वहीं बैठकर हस्तशिल्प जैसे सुजनी बनाना, घास की टोकरी बनाना, चटाई बनाना, सिलाई-बुनाई आदि का काम करती हैं। या, यूं कहें कि बरामदा ही उनके अड्डे का मुख्य स्थान होता है। *(Fig 3)*

*Figure 2 Muslim's house, Kajara Belwari, Uchchipur, Baisi, Purnea*

*Figure 3 Muslim's house, Kajara Belwari, Uchchipur, Baisi, Purnea*

बरामदे के अतिरिक्त घर की पिछले दीवारों के ऊपर तथा कोनों में भी अलंकरण किए जाते हैं। *(Fig 4)* कोनों में नीचे से लेकर ऊपर तक लगकर लंबित रूप से अलंकरण किए जाते हैं। अनाज रखने के लिए बने मिट्टी से बड़े पात्रों, जिन्हें कोठी कहा जाता है, की बाहरी सतह को भी अलंकृत किया जाता है।

अवसर तथा समय

भित्ति-चित्र विभिन्न पर्वों-उत्सवों तथा शादी-ब्याह के मौके पर बनाये जाते हैं। मृत्तिका उत्कीर्णन ऐसे मौके पर नहीं होते हैं क्योंकि मिट्टी से इन अलंकरणों को गढ़ना सहज नहीं होता और इनमें समय भी ज्यादा लगता है। मुख्यतः मिट्टी की दीवारों पर ये अलंकरण घर बनाने के साथ ही किया जाता है। विशेषकर वर्षा ऋतु की समाप्त होने पर, क्योंकि बरसात में दीवारों की मिट्टी गीली होकर गिरने लगती हैं तथा बांस के ढांचे भी खराब हो जाते हैं। अतः इन्हें प्रतिवर्ष मरम्मत भी करनी पड़ती है। लगभग इसी समय खेती-बाड़ी से फुर्सत रहती है  और तब गांव की महिलाएं तथा बच्चे अपना समय इन्हीं सब कार्यों में बिताते हैं।

*Figure 4 House of a Santhaal, Ghaat tola, Kuwandi, Purnea*

तकनीक

इसकी तकनीकी काफी सहज-सरल है। अक्सर ये दीवार बनाने के समय ही किए जाते हैं क्योंकि मिट्टी गीली रहती है। लेपन का काम महिलाएं ही करती हैं और उसी समय अलंकरण भी पूर्ण किया जाता है। यदि दीवार पुराना या सूखा रहता हैं, तब उसे फिर से खुरदरा बनाकर और पानी से भिंगो कर उस पर मिट्टी का प्रलेप चढ़ा-चढ़ा कर अलंकरण किया जाता है। अधिकांश अलंकरण मिट्टी जोड़-जोड़ कर ही बनाए जाते हैं। बहुत कम ही अलंकरण ऐसे हैं जिनमें काट-छांट की गयी हैं। अतः अक्सर ये अलंकरण दीवार की सतह से उभरे हुए रहते हैं।

दीवार लेपने के लिए जिस तरह के मिट्टी का व्यवहार किया जाता है, ठीक उसी तरह की मिट्टी से अलंकरण भी किया जाता है। आमतौर पर इसके लिए चिकनी या गोरी मिट्टी का प्रयोग किया जाता है। इसमें थोड़ा बहुत लसलसापन रहता है। इस मिट्टी के साथ धान के भूसे, सड़े पुआल तथा जूट के कुछ अंश मिलाकर पहले कई दिनों तक भीगने के लिए छोड़ दिया जाता है जिससे ये माध्यम मिट्टी के साथ अच्छी तरह से घुल मिल जाये। फिर इन सबकी अच्छी तरह से गुँधाई की जाती है और तब यह मिट्टी काम के लायक तैयार होती है। दीवार पर लगाए जाने वाली पहले सतह में भूसे, पुआल की मात्र ज्यादा रहती है, दूसरी-तीसरी सतह में इसकी मात्रा कम की जाती हैं और अंत में केवल शुद्ध मिट्टी की ही पतली परत देकर सतह को चिकना बना दिया जाता हैं। इसी तरह से दीवार तथा अलंकरण का काम पूरा किया जाता है।

आजकल कई घरों में 'सांचा' से ढालकर बेलबूटेदार आलेखों से भी अलंकरण करने का रिवाज चल पड़ा है क्योंकि इससे अलंकरण करना आसान है और कार्य भी जल्दी पूरा होता है। किन्तु, इन आलेखों में इनकी सहजता, सरलता कम तथा बाजारूपन ज्यादा होता हैं। अधिकांश घरों में इन अलंकरणों को रंगने का भी चलन है। यूं तो आदिवासी लोग अपने घरों की दीवारों को मिट्टी के ही या अन्य चूर्ण रंगों के घोल लगा कर सतह को कई रंगों की पट्टियों से सजाते हैं। इन अलंकारणों को अलग से भी रंग किया जाता है। ये रंग काफी चटकीले होते हैं और बाजार में पाये जाने वाले सस्ते दामों के चूर्ण रंग होते हैं। इन रंगों का इस्तेमाल ये सीधे तौर पर ही करते हैं न कि रंगों को आपस में मिलाकर अन्य तरह के रंग बनाते हैं।

फलतः इनके अलंकरणों में परस्पर विरोधी रंगों का इस्तेमाल देखने को मिलता है। इन रंगों में किसी तरह के गोंद का इस्तेमाल नहीं किया जाता हैं। बहुत आवश्यक हो, तब उनमें बबूल का गोंद मिलाते हैं जिसे वे खुद ही तैयार करते हैं। कभी-कभी वे होली में इस्तेमाल होने वाले रंगों को भी पानी के साथ मिलाकर पुताई करते हैं। यही वजह है कि ये रंग ज्यादा दिन टिकते नहीं हैं और धूप तथा पानी लगने पर हल्के हो जाते हैंरंगों को सतह पर लगाने के लिए बांस की पतली टहनी या किसी लकड़ी के पतले टुकड़े के एक सिरे पर पुराने कपड़ों को लपेट कर तूलिका बनाई जाते है और यही तूलिका इन उभरी हुई आकृतियों पर रंग चढ़ाकर उसमें प्राणवंतता ला देती है। इनके मुख्य रंग हैं - लाल, पीला, नारंगी, नीला, हरा, गेरू, तथा काला। नीले रंग के लिए कपड़े में डाले जाने वाले नील का व्यवहार किया जाता हैं तथा लाल रंग के लिए चूर्ण रंग या होली के रंग का। बाकी सभी रंग बाजारू और सस्ती कीमत के रंग होते हैं। अब अब घरों में, जिनका बाहरी समाज के साथ संपर्क है या जो शहरों में काम करते हैं, वहां एनामिल रंगों का प्रयोग भी दिखता है क्योंकि वह पानी लगने या हाथ लगने पर निकलता नहीं है और ज्यादा दिनों तक टिका रहता है।

*Figure 5 House of a Muslim Family, Kajara-Belwaari, Uchchipur, Baisi, Purnea*

विषय-वस्तु इन भित्तिकलाओं के विषय-वस्तु को यदि देखा जाए तो इनके कोई निश्चित विषय नहीं हैं। इसका कारण यह है कि ये किसी खास उत्सव या पर्व के अवसर के लिए नहीं बनाए जाते हैं बल्कि केवल अपने घर तथा परिवेश को सुंदर बनाने के लिए बनाए जाते हैं। मोटे तौर पर इनके विषय वस्तु को पशु-पक्षी मोटिव, बेल-बूटेदार मोटिव, तथा ज्यामितिक मोटिव के तौर पर विभाजित कर देखा जा सकता है। हिन्दू तथा आदिवासियों के घरों में जो अलंकरण हैं, उनमें अंतर करना मुश्किल हो जाता है क्योंकि आसपास रहने के कारण उनका एक-दूसरे का प्रभाव पड़ना काफी हद तक स्वाभाविक है। मुस्लिम घरों के मोटिव काफी अलग

होते हैं। वहां धार्मिक बंधन की बात आ जाती हैं, जबकि वह समुदाय भी उसी गांव में या आसपास के गांव में ही रहता है। *(Fig 5)*

इस्लाम में किसी भी आकृति के नकल की सख्त मनाही है, लेकिन आज शहरों में रहने वाले मुस्लिम काफी हद तक आगे बढ़ चुके हैं। आज देश-विदेश में बड़ी संख्या में मुस्लिम कलाकार हैं जो आकृतिमूलक चित्र तथा मूर्ति की रचना करते हैं। गांवों में मानसिकता अब भी बदली नहीं हैं। अतः उनके अलंकरणों में ज्यामितिक आलेख ही मिलते हैं। कभी-कभी वे ज्यामितिक आलेख के साथ-साथ अपने धार्मिक चिन्ह चांद-तारे तथा कहीं-कहीं मस्जिद की मीनारें तथा गुंबद को भी दर्शाते हैं। हिन्दू तथा मुस्लिम भित्ति कला के अलंकरणों में यह अंतर इतना स्पष्ट है कि कोई भी आसानी से समझ सकता हैं कि ये मुस्लिम परिवार का घर है। *(Fig 6)*

*Figure 6 Front wall of a traditional Muslim family, Kajarā-Belwaari, Uchchipur, Baisi, Purnea*

पशु-पक्षी के मोटिव में कुछ ऐसे पक्षी हैं जो हर जगह, हर गांव में मिल जाते हैं। पक्षियों में मोर काफी प्रचलित है, खासकर संथालों के घरों में। पूर्णिया में मोर तो पाये नहीं जाते, फिर उन्होंने इन्हें कैसे उकेरा? यह सवाल है। यदि इसकी सरलीकृत आकार तथा बनावट को देखें तो ऐसा लगता है कि यह मोटिव सही रूप से परंपरागत हैं। चूंकि ये संथाल संथाल परगना और छोटा नागपुर से यहां आए थे, इसलिए यह संभव है कि उनके पूर्वजों ने वहां जंगलों में मोर देखा हो और उसकी सुंदरता से प्रभावित होकर उन्हें अपने घरों की दीवारों पर उकेरा हो और जिसे उनके वंशज आज भी दुहरा रहे हों। संभव है

कि उन्होंने मेले के चिड़ियाघरों में मोर देखा हो और उनसे प्रभावित होकर उनकी खूबसूरती का इस्तेमाल अपने कलाकर्मों में किया हो, क्योंकि यह केवल संथालियों का ही नहीं, बल्कि गैर-संथालियों का भी प्यारा विषय है। यहां की कढ़ाई, कशीदाकारी में भी मोर मोटिव का व्यवहार प्रचलन में हैं।

मोर के अलावा उनके अपने पालतू पक्षी, कबूतर तथा मुर्गी के साथ कुछ मनगढ़ंत पक्षी भी इन घरों की दीवारों को सुशोभित करते हैं। इनमें पक्षियों की परीचिति से अलग उनके रूपाकारगत (structural) गुणों को महत्व दिया गया है। अक्सर पक्षियों के जोड़ों को सम्मुख रूप से (face-to-face) तथा कभी-कभी विपरीतमुखी (back-to-back) रखते हुए समरूप भाव (symmetry) से उपस्थापित किया जाता है। *(Fig 7)*

*Figure 7 Front wall of house, Musahar family, Kajara, Purnea*

अक्सर पक्षियों को फूल के पौधे, डाल आदि पर बैठा दिखाया गया हैं। संथालों तथा अन्य जाति के पक्षियों के चरित्र, बनावट तथा रूपाकार और विषय संथालों से भिन्न हैं। पक्षियों के चरित्रों के ठोस (solid) तथा रैखिक (linear) गुणों को भली-भांति रूप से सामंजस्यपूर्ण (harmonious) ढंग से अंकित किया गया है। उन पक्षियों की बनावट को देखें तो वह उनकी वास्तविक (realistic) बनावट से काफी भिन्न लगती हैं। उन रूपाकारों (forms) के उपस्थापन में वे वास्तविक सतही रूप को छोड़ आभ्यंतरिक वस्तुगत रूप तथा चरित्र को महत्व देते हैं जिसमें उनकी सरल प्रकृति, सहजात प्रतिभा व उनके आवेग का भाव स्वतः प्रकाश पाता है।

पशुओं में हाथी लोकप्रिय विषय है। उसके अंग-प्रत्यंगों को विभिन्न प्रकार से सरलीकृत कर इन अलंकरणों में इस्तेमाल किया गया है। हाथी को मांगलिक तथा शान-शौकत का प्रतीक माना गया है। हाथी से बच्चों को भी काफी लगाव रहता है। संभव है कि उनका प्यारा जानवर होने के कारण वे उन्हें अपने घरों की दीवारों पर अंकित करते हों क्योंकि अलंकरण का कार्य केवल महिलाएं ही नहीं करती हैं बल्कि आठ से बारह-तेरह साल के बच्चे भी बड़े चाव से दीवारों पर अपने अनुभव उकेरते रहते हैं जो उनमें छिपे सौन्दर्यबोध का एक सुंदर उदाहरण है। इसीलिए भी उन आकृतियों में बाल सुलभ चिंतन तथा विभिन्न तरह के सरलीकृत आकार देखने को मिलता है।

हाथी को छोड़ कर अन्य पशु इतने नहीं मिलते जिसका उल्लेख किया जा सके। कुछ एक घरों में घोड़ा तथा कुत्ते की आकृति दिख जाती है। घोड़ों की संख्या इन गांवों में अच्छी ख़ासी है तथा कुत्ते तो हर घर

में मिल जाते हैं, परंतु उनके मोटिव्स प्रचलित नहीं हैं। एक-दो घरों में ऊंट की आकृति एक जुलूस की तरह से उकेरा गया है, लेकिन यह मोटिव भी आम नहीं है। नदी-नालों से भरे इस क्षेत्र में मछली खाने का रिवाज सर्व-साधारण है। मछली को शुभ संकेत भी माना जाता है इसलिए इन कुटीर अलंकरणों में मछली के मोटिव भी मिलते हैं।

कुछ घरों में लता-फूल आदि के सजावटी पैटर्न भी हैं जो अक्सर घर के बाहरी कोने और दरवाजे की चौखट के आसपास स्थान के हिसाब से क्षैतिज (horizontal) व लंबित (vertical) रूप में उपस्थापित किया गया है। विभिन्न तरह के फूल-पत्ती जो उनके अपने आसपास के क्षेत्रों में पाये जाते हैं, के चरम सरलीकृत आकार को रंग तथा रूपाकार के माध्यम से दर्शाया है और जिनका दुहराव पूरे सतह में एक गतिशीलता लाता है। ये स्थापत्य की कठोर ज्यामिति के साथ एक अद्भुत सामंजस्य स्थापित करते हैं। ये लोग अपने आस-पास के प्राकृतिक फूल-पौधों और लताओं की सुंदर आकृतियों के छंदमय गुणों से प्रभावित होकर तथा कुछ परंपरागत मोटिव का निरूपण करते हैं। इनमें उनका सतही (surface) स्वरूप नहीं होता है, बल्कि उनमें गर्हित उनका अतिसंक्षिप्त सार ही होता है। फूल-पत्तों के ये मोटिव स्थानीय सुजनी तथा रूमाल की किनारी में भी पाये जाते हैं।

इन अलंकारणों में सबसे ज्यादा ज्यामीतिक अलंकरण मिलते हैं। जो प्रायः सभी समुदायों के घरों में हैं। विशेषकर मुस्लिम घरों में तो निश्चित रूप से ही। यदि इन आलेखों में प्रयुक्त मोटिव का बारीकी से अध्ययन किया जाये, तब हम पाते हैं कि ये किसी-न-किसी स्थानीय पौधे से मेल खाते हैं। अक्सर ये ज्यामीतिक रूपाकार प्रकृति के रूपाकारों का ही रूपांतरित रूप हैं। कहीं-कहीं मिट्टी के अलावा इन

*Figure 8House of a Mushar family, Kajara, Purnea*

*Figure 9 Wall of a house of a Kurmi family, Bardela, near Dhamdaha, Purnea*

अलंकरणों में कांच की चूड़ियों के टुकड़े, आईने के टुकड़े या रंगीन शीशों के टुकड़ों का भी इस्तेमाल करते हैं। *(Fig 8 & 9)* कभी-कभी ये मोटिव को इतना तोड़ते-मरोड़ते हैं कि यह एक भ्रम की स्थिति पैदा करता है। इसके अलावा ईसाई मिशनरियों का प्रभाव भी यहां के अलंकरण पर भी पड़ा हैं। कहीं-कहीं उसमें

ईसाई धर्म के प्रतीक 'क्रॉस' को भी उपस्थापित किया गया है तथा उनकी शिक्षा तथा संपर्क में आने से इनकी कला में आभिजात्यता भी आने लगी है।

इन अलंकरणों में रंग करने का प्रचलन सबसे ज्यादा संथाल समुदाय में हैं। इनका प्रिय रंग नीला देखा गया है। पक्षियों के रंगों के दागों के लिए वे इसके ऊपर से अन्य रंगों से बुनावट (texture) तैयार करते हैं। *(Fig 10)* रंग लगाने के समय वे कभी भी सचेत हो कर रंग नहीं लगाते। अपने आवेग को अतिशीघ्र ही रूपायित करने की प्रवृत्ति के कारण इनमें स्वतःस्फूर्तता आती है तथा इनके आवेग को अच्छी तरह से समझा जा सकता है।

*Figure 10 House of a Adivasi family, Jamaal tola, near Kuwandi village, Dhamdaha, Purnea*

एक अत्यंत ही विलक्षण मृत्तिका उत्कीर्णन का उदाहरण है हरिजनों के घरों में बने उनके पूजा का कमरा। यह एक ऐसा कमरा है जिसे उनके परिवार के लोगों के अलावा शायद एक-दो आस-पड़ोस के लोग ही देख पाते होंगे। उनके लिए यह एक बहुत ही पवित्र स्थान है जिसमें किसी भी अन्य व्यक्ति का प्रवेश वर्जित है। मुझे इस पवित्र कमरे में जाने की इजाज़त तो मिली, परंतु बहुत सारी शर्तों के साथ। एक अचंभित करने वाला वातावरण होता है वहां का। छोटी-सी अंधेरी कोठरी में दीवारों पर काफी सारे आकार बने महसूस किये जा सकते हैं जिसका आकार निर्दिष्ट नहीं होता। विभिन्न तरह की आकृतियां पूरी दीवार पर फैली रहती हैं। उन आकृतियों पर चावल के आटे के घोल (जिसे पिठार कहा जाता है) का छिड़काव किया जाता है और कभी-कभी हाथ के पंजों के छाप भी लगाये जाते हैं। उनमें बीच-बीच में सिंदूर (vermilion) से कुछ चिन्ह भी बनाए जाते हैं। अंधेरे में पिठार की सफेदी सिंदूर के साथ मिलकर एक जादुई शक्ति का

माहौल बनाती है। एक अदृशय शक्ति का एहसास निश्चय ही किसी भी व्यक्ति को भय के आवेग के साथ-साथ श्रद्धा एवं आस्था से भर देता है। इसके अलावा इसी दीवार से सटी भूमि पर भी मिट्टी से ही कुछ गोले जैसी आकृति बनी रहती है। शायद यह शिवलिंग/देवी/शक्ति का प्रतीक हो। कुछ एक घरों में इन दीवारों पर उभरी आकृतियों के साथ-साथ ईश्वर के विभिन्न अवतारों के चित्र भी टांग दिए जाते हैं। कुल मिलाकर इस कमरे में एक रहस्यमय वातावरण की सृष्टि होती है जिससे उनके इन विमूर्त आकृति में बसी उनकी असीम आस्था की झलक देखने को मिलती है।

पूर्णिया के इन ग्रामीण मृत्तिका उत्कीर्णन अलंकरण का एक सर्वप्रमुख गुण है - स्थान विभाजन। किसी भी दृश्य कला में स्थान विभाजन की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। विशेषकर भित्ति अलंकरण में इसका अलग ही महत्व होता है। इसका संबंध स्थापत्य से ता है जिसमें स्थापत्य के ढांचे, सतह, उनके विभिन्न स्तरों तथा दीवार के आकार को भी ध्यान में रखना होता है। किन्तु लोक शिल्पी कभी भी इस तरह की तकनीकिगत बौद्धिकता को महत्व नहीं देते हैं। अपने फुर्सत के क्षणों में अपने परिवेश को सुंदर बनाने के लिए उनके मन में जिस प्रकार का आवेग आता है, वह अपने सामने की दीवार पर उस आवेग को रूप प्रदान कर देते हैं। इसके लिए वे सिद्धांतों के अपेक्षा आवेग को महत्व देते हैं। फिर भी, उनमें छिपी रहस्यमय सृजन शक्ति के कारण उनके द्वारा उकेरे गए रूपाकारों के उपस्थापन में ऐसा गुण रहता है जो स्थापत्य की सतह को स्पंदित (vibrate) कर देता है। *(Fig 11)*

*Figure 11 Front wall of a Kurmi Family, Ram Bagh, Purnea*

इन ग्रामीण मृत्तिका उत्कीर्णनों के सूक्ष्म अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि वे रूपाकारों का सृजन केवल रूप प्रदान करने के लिए ही नहीं करते बल्कि उसका संबंध पूरी दीवार के साथ रखते हैं। फलस्वरूप पूरी सतह में नकारात्मक (negative) और सकारात्मक (positive) स्थान (space) का सृजन होता है, जनमें आपस में सामंजस्यपूर्ण संबंध होता है। यहां के प्रायः सभी अलंकरणों में हम देखते हैं कि वे कभी भी पूरी दीवार की सतह को रूपाकारों से नहीं भर देते बल्कि रूपाकारों के गठन के मुताबिक खाली स्थान भी छोड़ते हैं जिससे कि रूपाकार उस स्थान में पूर्ण रूप से अपनी अभिव्यक्ति दे सके। बड़े-से-बड़े खाली स्थान में एक छोटा मोटिव कभी भी दीवार से अपना संबंध नहीं छोड़ता क्योंकि उस बड़े खाली स्थान में भी उसका ऐसा ढांचा बना रहता है कि पूरे खाली स्थान को भार-समय (balance) करता है। दीवार पर उकेरे गए इन रूपाकारों में त्रि-आयामिकता (three dimensionality) नहीं है। समतल सतह पर उभरे ये रूपाकार भी समतल हैं। इस समतलता को तोड़ने के लिए शिल्पियों ने विभिन्न प्रकार से कोशिश की है। कभी-कभी वे मोटिव के कुछ अंश में रैखीय (linearity) रखते हैं तो कभी रंगों की बुनावट (texture) से उसे दीवार की समतलता से अलग करते हैं। यह सिर्फ रूपाकार के द्वारा ही नहीं होता है, बल्कि दीवार के बाकी खाली समतल जगहों में भी विभिन्न तरह के प्रकोष्ठ (block) बनाकर, मिट्टी के स्तर लगाकर सतह को ऊंचा कर उसकी समतलता में मात्रा लाने की कोशिश करते हैं। ये प्रकोष्ठ (block) इन अलंकरणों के लिए फ्रेम का काम भी करते हैं। किसी भी हालत में स्थान के हिसाब से ही रूपाकारों का निरूपण किया जाता है। कभी भी ऐसा नहीं लगता है कि इन रूपाकारों को इन स्थानों में जबर्दस्ती उकेरा गया है। रूपाकारों की जैविकता, उसकी बनावट में फलने-फूलने के जो गुण हैं या उनकी अपनी जो स्वतंत्र अभिव्यक्ति है तथा शिल्पी का जो आवेग है, वह उस स्थान में स्वतंत्रतापूर्वक अपना परिचय देता है।

अपने आवेग को अभिव्यक्त करने के लिए विभिन्न स्थानों के लोक शिल्पी अपने घरों की दीवार पर विभिन्न प्रकार के तरीके अपनाते हैं। तुलनात्मक रूप से अगर हम देखें तो हम पाते हैं कि जहां गुजरात तथा राजस्थान में ये उत्कीर्णन ज्यामितिक (geometrical) तथा आलंकारिकता (ornamentation) पर आधारित हैं वहां पूर्णिया के भित्ति उत्कीर्णन सजावट के साथ-ही-साथ भावाभिव्यक्ति, परिवेश, रूपाकार के गठन तथा मूर्तिगत गुणों पर आधारित हैं। न तो यहां के अलंकरण में किसी तरह का संकेत है या प्रतीक है और न ही ये किसी धार्मिकता के बंधन में हैं। जहां भी धार्मिक चिन्हों का उपयोग किया गया हैं, उसके पीछे भी सजावट के लिए उसके रूपाकार का सहारा लिया गया है। इससे इतर पंजाब तथा बिहार के ही मधुबनी जिले के अलंकरण या तो पूजा के लिए व्यवहृत होते हैं या धार्मिक विश्वास के आधार पर सांकेतिक रूप में उनका निरूपण हुआ है।

पूर्णिया के उत्कीर्णन में न तो आभिजात्यता (sophistication) है और न ही वहां किसी तरह का कोई प्रभाव (influence) ही काम करता है। इसकी तुलना में राजस्थान-गुजरात के अलंकरणों में उनकी वेश-भूषा में प्रचलित मोटिव का प्रभाव (influence) इन भित्ति अलंकरणों पर पड़ा है। साथ ही उनमें आभिजात्यता भी बड़े पैमाने पर है। इनमें शिल्पियों की कार्य कुशलता का महत्व ज्यादा हो जाता है बनिस्पत रूपाकार के गठन तथा उपस्थापन के। पूर्णिया के इन उत्कीर्णनों में आस-पास के परिवेश की झलक तो मिलती हैं, परंतु उनमें मानव आकृतियों का अभाव है।

ये ग्रामीण लोकशिल्पी जिस आर्थिक स्तर के हैं, उन्हें आजीविका के लिए कठोर दैनिक श्रम करना पड़ता हैं। उन्हें अपने दैनिक कार्यों से ही फुर्सत नहीं मिलती है, कि वे कुछ इतर सोच सकें। फिर भी, जितना समय वे निकाल पाते हैं उसमें ही अपने घरों को सजाने का प्रयास करने के कारण ही उनके अलंकरणों में सहजता तथा स्वतःस्फूर्तता का गुण प्रत्यक्ष होता है जिसमें बौद्धिकता कम तथा उनका शैल्पिक सृजन ज्यादा होता है। इन शिल्पियों की आर्थिक स्थिति, दिन-ब-दिन बिगड़ती जा रही है। बढ़ती जनसंख्या, रोजगार के घटते अवसर तथा आभिजात्य बनने की होड़ एवं समय सापेक्ष कार्य होने के कारण इन अलंकरण के कार्यों में कमी होती जा रही है। इसका एक प्रमुख कारण उनके द्वारा किए गए अलंकरणों को किसी भी तरफ से प्रोत्साहन तथा पहचान का नहीं मिलना तो है ही, एक बड़ा कारण है सरकार के द्वारा उनके तथाकथित जीवनोद्धार के लिए आवंटित की गयी इंदिरा आवास योजना। इस योजना से उन्हें एक कमरे का पक्का मकान तो जरूर मिल जाता हैं, लेकिन उनमें न तो वे पहले की तरह रह पाते हैं और न ही कलाकर्म करने का कोई अवसर ही बन पाता है। इनके अलावा कुछ बाजारू व्यावसायिक छुटभैये चित्रकारों के द्वारा उन इलाकों में जाकर चटकीले रंगों में व्यावसायिक तौर पर चित्र बना देने की वजह से इन कार्यों में कमी आती जा रही है। अब स्थिति यह है कि इन ग्रामीण लोगों की यह सहजात प्रतिभा पूर्ण रूप से समाप्त होने की कगार पर है।

---